हिंदी में *ट्रैक्टेटस* : एक और पुनर्जन्म

प्रसन्न कुमार चौधरी

एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद को विट्गेन्स्टाइन ने भाषा के खेलों की सूची में शामिल किया है। मूल लेखक और उसकी रचना यहाँ प्राधिकार की भूमिका में होती हैं। विश्व की विभिन्न भाषाओं में रचित श्रेष्ठ रचनाएँ अनूदित होने से इंकार कर देती हैं— वे अपनी अद्वितीयता, अपना विशिष्ट सौंदर्य खोना नहीं चाहतीं। इसलिए महान रचनाकार अपनी रचनाओं के अनुवाद अथवा अन्य कला-माध्यमों में उनके रूपांतर से प्रायः असंतुष्ट ही रहते हैं, यहाँ तक कि नाराज़ भी।

हर भाषाई समुदाय को विरासत में एक भाषा-परम्परा प्राप्त होती है— कथाओं, कथाओं के वाचन, वाचन के साथ अंग-संचालन तथा दैहिक भंगिमाओं की एक पूरी दुनिया, एक पूरा-का-पूरा ध्वनि-संसार। रचनाएँ इसी ध्वनि-संसार में अवस्थित होती हैं। समाजों के बीच अंतर्सम्पर्कों के कारण इस ध्वनि-संसार में बहुत कुछ साझा भी है, लेकिन अलग-अलग भाषाओं की पहचान इन साझा प्रवर्गों से नहीं, बल्कि भिन्नताओं से होती है।

अनुवादक के सामने चुनौती यह होती है कि वह रचना की अद्वितीयता को पूरा सम्मान देते हुए एक भाषा-संसार से दूसरे भाषा-संसार में उसके कायांतरण के ज़रिये उस एक को दो में, अ-द्वैत को द्वैत में बदल दे और उस रचना को अपनी भाषा के विशिष्ट सौंदर्य से मण्डित कर दे। अनुवाद रचना की और अनुवादक रचनाकार की भूमिका में आ खड़ा होता है। अनुवाद की यह चुनौतीपूर्ण क्रिया अनवरत चलती रहती है। कृति प्रायः दुबारा नहीं लिखी जाती, लेकिन अनुवाद के साथ यह बाध्यता नहीं होती। मूल कृति बार-बार अनूदित होती रहती है।

विट्गेन्स्टाइन ने एक जगह लिखा है, 'जिसे वस्तुतः विचारों का प्रवाह होना चाहिए, एक किताब अथवा एक लेख उसे जड़ीभूत कर देता है।' अनुवादों का जीवंत प्रवाह जड़ीभूत मूल कृति को अपनी जड़ता से मुक्त कर देता है। एक अद्वितीय कृति का अनेक अनुवादों में पुनर्जन्म होता रहता है। अनुवादक के रूप में रचनाकार का भी अलग-अलग भाषा-संसार में अवतार होता रहता है।

इस प्रकार अनुवादक-रचनाकार के समक्ष एक कठिन चुनौती होती है और इस चुनौती पर कम ही खरे उतर पाते हैं। मूल लेखक अनुवाद के स्पर्श से अपनी रचना को निष्कलुष रखना चाहता है,
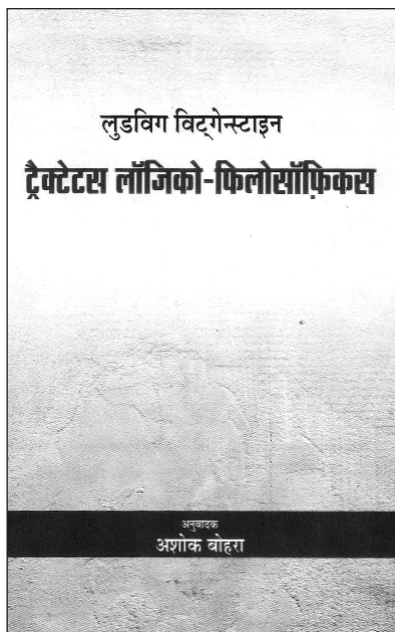
ट्रैक्टेटस लॉजिको-फ़िलोसॉफ़िकस
(2016)
लुडविग विट्गेन्स्टाइन
अनुवाद : अशोक वोहरा
ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली
मूल्य : 200 रु., पृष्ठ : 112

वहीं अनुवादक अपनी भाषा में रचनाकार के स्पर्श का सुख पाना चाहता है।

हर समाज में दार्शनिक साहित्य की अपनी एक परम्परा होती है और अपनी दार्शनिक शब्दावलियों का समूह भी। जनजातीय सृष्टि-कथाओं तथा लोक-साहित्य में जो जीवन-दर्शन है उसे तो कथावाचक अथवा नर्तक-नर्तकियों के अंग संचालन अथवा दैहिक भाव-भंगिमाओं को देखे-सुने बिना ग्रहण करना मुश्किल है— सुनना-देखना समझने की एक शर्त के रूप में उपस्थित होता है। अपने देश में पूर्व-मीमांसा, उत्तर-मीमांसा, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, जैन, बौद्ध, आजीवक, लोकायत, अद्वैत-द्वैत-द्वैताद्वैत-विशिष्टाद्वैत, सूफ़ी आदि दर्शनों की एक लम्बी परम्परा रही है। इन दर्शनों की कई शाखाएँ-उपशाखाएँ हैं और सभी की अपनी-अपनी विशिष्ट शब्दावलियाँ भी। सूफ़ी दर्शन की विभिन्न शाखाओं की शब्दावलियों के तार अरब दार्शनिक साहित्य से— इब्न रश्द, इब्न सीना, अल-ग़ज़ाली, इब्न खाल्दून, आदि से जुड़ते हैं। इसी तरह आधुनिक युरोपीय तार्किक-गणितीय ज्ञान की पृष्ठभूमि में चीन-भारत-ईरान-यूनान-रोम-अरब की लम्बी तार्किक-गणितीय परम्परा रही है और उसके अनेक पद और शब्द इसी पृष्ठभूमि से लिए गये हैं। इस यूरेशियाई भूखण्ड के अनेक स्थल तथा समुद्री मार्गों-उपमार्गों पर सदियों से सौदागरों, साम्राज्य की सेनाओं, संतों-फ़क़ीरों, यात्रियों की टोलियों की आवाजाही होती रही है और इन क्षेत्रों के बीच ज्ञान का आदान-प्रदान भी। अनुवादकों को शब्दावलियों के इसी महासमुद्र से अपने काम का समानार्थक शब्द ढूँढ़ कर निकालना होता है। आप अंदाज़ा लगा सकते हैं कि यह कितना श्रम-साध्य कार्य है।

एक शब्द का अर्थ अलग सांस्कृतिक परिवेश में भिन्न अर्थ ग्रहण कर लेता है। 'विज्ञान'— पश्चिम में इस शब्द का जो सामान्य अर्थ ('साइंस') है, वह उपनिषद और बौद्ध दर्शन में इसके अर्थ ('चेतना') से बिल्कुल भिन्न है। 'फ़िलोसॉफ़ी'— यह मूल यूनानी शब्द लैटिन से होते हुए अंग्रेज़ी में दाख़िल हुआ, इसका शाब्दिक अर्थ 'प्रज्ञा-प्रेम' ('लव ऑफ़ विज़डम') है, और इसका निहितार्थ संसार, जीवन, समाज, भाषा आदि के तात्त्विक ज्ञान से है। 'दर्शन' का ध्वन्यार्थ इससे भिन्न है— ज्ञान यहाँ 'देखा' जाता है। विट्गेन्स्टाइन को भी 'देखना' शब्द ख़ासा प्रिय था। ऐसे कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं।

ट्रैक्टेटस का अनुवाद किसी भी अनुवादक के लिए एक कठिन चुनौती है। हिंदी अनुवाद की इस कठिन चुनौती को स्वीकार करने और इसे बख़ूबी निबाह ले जाने के लिए अशोक वोहरा को बधाई— और इसी के बहाने मुझे विट्गेन्स्टाइन के बारे में इतना कुछ लिख जाने का मौक़ा देने के लिए भी।

क़रीब पच्चीस वर्ष पहले मुझे *ट्रैक्टेटस* का एक हिंदी अनुवाद देखने-पढ़ने का अवसर मिला था (साथ में डेविड ह्यूम, काण्ट आदि की रचनाओं के अनुवाद का भी)। वह सम्भवत: राजस्थान या मध्य प्रदेश हिंदी अकादमी का प्रकाशन था— अब न वह किताब मेरे पास है और न ही उसकी कोई ख़ास स्मृति। इसलिए दोनों अनुवादों का तुलनात्मक अध्ययन करने की स्थिति में मैं नहीं हूँ।

अशोक वोहरा का अनुवाद अच्छा है— उन्होंने इस बात का ख़ास ख़्याल रखा है कि अनुवाद में

अंग्रेज़ी वाक्य-विन्यास का अनुसरण करने की जगह हिंदी के वाक्य-विन्यास में बातें रखी जाएँ। कई बार देखा जाता है कि अंग्रेज़ी वाक्य-विन्यास का हूबहू अनुसरण करने के क्रम में अनुवाद बोझिल और अटपटा हो जाता है। हिंदी में भाषा का सहज प्रवाह बनाए रखने के लिए अनेक अवसरों पर यह ज़रूरी हो जाता है कि अंग्रेज़ी के एक लम्बे वाक्य को दो-तीन छोटे वाक्यों में बाँट कर लिखा जाए। ऐसा करने के क्रम में कई बार गड़बड़ी भी हो जाती है— गड़बड़ी यह कि मूल लेखक जिस बात को सम्प्रेषित करना अथवा जिस पर ज़ोर देना चाहता है, कहीं वही बात महत्त्व न खो बैठे या फिर वह ठीक से सम्प्रेषित ही न हो पाए। अशोक वोहरा के अनुवाद में यह सहज प्रवाह बना रहता है। दार्शनिक शब्दावली में भी उन्होंने यह कोशिश की है कि भारतीय तार्किक-गणितीय परम्परा में उपलब्ध समानार्थी अथवा मिलते-जुलते शब्दों का प्रयोग किया जाए, और अपनी ओर से अनावश्यक शब्द गढ़ने से बचा जाए। यह श्रम-साध्य प्रक्रिया है जिसका 'अनुवादकीय' में उन्होंने ज़िक्र किया है और उनका यह सराहनीय श्रम पुस्तक में परिलक्षित होता है। अंग्रेज़ी 'प्रोपोज़ीशन' के लिए आम तौर हम 'प्रस्थापना' का प्रयोग करते हैं, लेकिन भारतीय तार्किक साहित्य में 'प्रतिज्ञा' (और इसी 'प्रतिज्ञा' से 'प्रतिज्ञप्ति') एक प्रचलित पद है (पञ्चावयव युक्त अनुमान वाक्य के पाँच अवयव हैं— प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनयन और निगमन)।

अनुवाद पर कुछ टिप्पणियाँ जिनसे अनुवादक का सहमत होना ज़रूरी नहीं है :

1. पृष्ठ 39, 1.12 : 'द केस' और 'नोट द केस' के लिए क्रमशः 'सत्' और 'असत्' का प्रयोग मेरे विचार से सही नहीं है। इन शब्दों के लिए अनुवादक, 1.21 और 2 में 'अस्तित्व' और 'अनस्तित्व' तथा ('द केस' के लिए) 'जो कुछ भी है' जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं जो सही है। इसलिए, 1.12 का अनुवाद यह होना चाहिए : 'क्योंकि तथ्यों की समग्रता ही क्या कुछ है, और यह भी कि क्या कुछ नहीं है, इसका निर्धारण करती है।'

हमारी चिंतन परम्परा में 'सत्' और 'असत्' का जो ध्वन्यार्थ है, वह विट्गेन्स्टाइन की नज़र में दर्शनशास्त्र का विषय ही नहीं है। वह तो अनिर्वचनीय, मौन का विषय है।

विट्गेन्स्टाइन का 'ट्रू' और 'फ़ॉल्स' हमारे दैनिक व्यवहार में, गणित तथा तर्कशास्त्र में प्रयोग होने वाले 'सही' और 'ग़लत', 'टिक' (   ) या 'क्रॉस' (X) चिह्न के समकक्ष है। पूरी किताब में 'सत्यात्मक' और 'असत्यात्मक' का प्रयोग इसी अर्थ में किया गया है और इस पर मुझे कोई आपत्ति नहीं है। ज़ाहिर है, यहाँ सत् या सत्य ऋग्वेद के नासदीय सूक्त (आरम्भ में न सत् था न असत्) वाला या फिर 'सत्यम् शिवम् सुंदरम्', 'सत्यमेव जयते', 'सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म', 'असतो मा सद्गमय', आदि वाला सत्य नहीं है; यह अंग्रेज़ी में कैपिटल टी (T) से शुरू होने वाला 'ट्रुथ' भी नहीं।

एक दो जगह छोड़कर शेष किताब में भी 'सत्' और 'असत्' का प्रयोग नहीं किया गया है।

2. पृष्ठ 42; 2.024, 2.025, 2.027 में 'सब्सटैंस' के लिए 'द्रव्य' की जगह 'तत्त्व' शब्द ही ज़्यादा उपयुक्त है। 2.021 और 2.0211 में अनुवादक ने इसी शब्द (तत्त्व) का प्रयोग किया है। 2.027 तथा 2.0271 में 'सत्' की जगह 'अस्तित्वमान तत्त्व' होना चाहिए। 2.0271 में ही 'अस्थायी' की जगह 'अस्थिर' ही ठीक रहेगा।

3. पृष्ठ 56; 4.026 का दूसरा वाक्य; यह वाक्य इस प्रकार होना चाहिए : 'बहरहाल, प्रतिज्ञप्तियों की सहायता से हम अपना अभिप्राय स्पष्ट कर पाते हैं।'

4. पृष्ठ 57; 4.032 : लैटिन 'एम्बुलो' (अंग्रेज़ी 'एम्बल') का आशय 'चलने' से है और इसी में उपसर्ग और प्रत्यय लगाकर कई शब्द बनते हैं; जैसे, 'एम्बुलेंस', 'प्रिएम्बल', 'पेराम्बुलेटर' आदि। 'प्रहार' की जगह इसी चलन से मिलता-जुलता हिंदी शब्द दिया जाना चाहिए। 'चल' से ही कई शब्द बनते हैं।
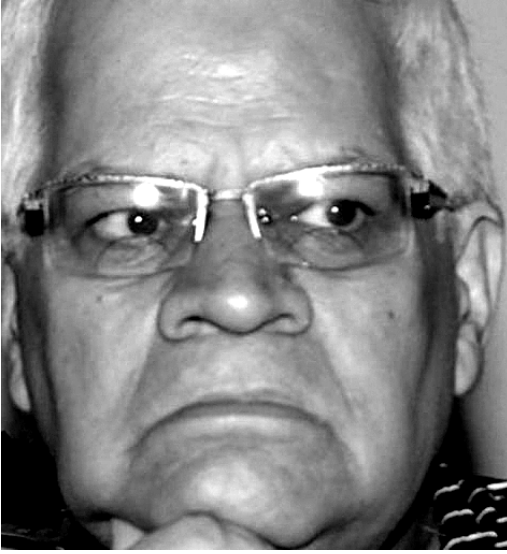
अशोक वोहरा

5. पृष्ठ 57; 4.04 : हर्ट्ज के 'मैकेनिक्स' से यहाँ आशय हायनरिख़ हर्ट्ज की किताब *द प्रिंसिपल्स ऑफ़ मैकेनिक्स प्रज़ेण्टेड इन अ न्यू फ़ॉर्म* से है। यह किताब, 1899 में मैकमिलन ऐंड कम्पनी लिमिटेड, लंदन द्वारा प्रकाशित की गयी थी। इसलिए '(हर्ट्ज के यांत्रिक गतिक नमूनों से तुलना कीजिए)'। की जगह यह लिखा जाना चाहिए '(हर्ट्ज के मैकेनिक्स में वर्णित गतिक नमूनों से तुलना कीजिए)'।

6. पृष्ठ 64; 4.12721 का दूसरा वाक्य इस प्रकार होना चाहिए : 'इसलिए आकारगत प्रत्यय को प्रारम्भिक विचार के रूप में एक साथ प्रस्तुत करना असम्भव है.' इसी के अंतिम वाक्य का अंतिम अंश इस प्रकार होना चाहिए : '.... एक साथ प्रारम्भिक विचारों के रूप में प्रस्तुत करना असम्भव है, जैसाकि रसेल ने किया है।'

7. पृष्ठ 71; अंतिम वाक्य इस प्रकार होना चाहिए : 'पुनरुक्ति और व्याघाती प्रतिज्ञप्तियाँ संकेतों के समुच्चय की परिसीमित स्थितियाँ— वस्तुत: उनका विघटन— होती हैं।' 'लिमिटिंग' के लिए 'अवच्छेदक' की जगह 'परिसीमित' ही बेहतर होगा। अनुवादक ने एक जगह इस शब्द के लिए 'सीमांत' का प्रयोग किया है और वह भी 'अवच्छेदक' से बेहतर है।

8. पृष्ठ 78; 5.24 की अंतिम पंक्ति में 'साधारण धर्म' की जगह 'साझा' का प्रयोग ही उपयुक्त होगा।

9. पृष्ठ 79; 5.252 की दूसरी पंक्ति में '(रसेल और व्हाइटहेड द्वारा दी गयी क्रम-परम्परा' की जगह '.... द्वारा दिये गये क्रम-सोपानों में' हो तो बेहतर। इसी में आगे के वाक्य में ऐसे क्रम की जगह ' ... ऐसे क्रमों की सम्भावना' होनी चाहिए।

10. पृष्ठ 80; 5.3 : छठी-सातवीं पंक्ति में '... तो प्राथमिक प्रतिज्ञप्ति देने वाली कोई एकल प्रक्रिया भी होती है' की जगह यह होना चाहिए '... तो हमेशा प्राथमिक प्रतिज्ञप्तियों पर की जाने वाली कोई एकल प्रक्रिया भी होती है जो वही परिणाम दे।'

11. पृष्ठ 80; 5.32 की दूसरी पंक्ति में 'सत्यात्मक-प्रक्रियाओं के सीमित आनुक्रमिक प्रयोगों ...' की जगह 'सीमित सत्यात्मक-प्रक्रियाओं के आनुक्रमिक प्रयोगों ...' होगा।

12. पृष्ठ 86; 5.511; पंक्ति को इस प्रकार लिखा जाए तो बेहतर होगा : 'तर्कशास्त्र— सर्वग्राही तर्कशास्त्र जो संसार का दर्पण है— ऐसी विलक्षण बुनावटों और कल्पनाओं का प्रयोग कैसे कर सकता है ? इसका एकमात्र कारण यह है कि वे सभी अनंत रूप से सूक्ष्म तंत्र में एक-दूसरे से बँधे हैं— एक विशाल दर्पण की रचना करता तंत्र।'

13. पृष्ठ 90; 5.535 में 'axiom of infinity' के लिए 'अपरिमित-अभिगृहीत' की जगह 'अनंत की स्वयंसिद्धि' ही मेरी समझ से ठीक होगा। अंतिम पंक्ति में 'अनेक नामों' की जगह 'अनंत नामों' होना चाहिए।

14. पृष्ठ 92; 5.552 की अंतिम दो पंक्तियों में कोष्ठक में दिये गये शब्दों '(तकनीकी संबंधी)'

और '(विषय-वस्तु संबंधी)' की ज़रूरत नहीं है।

15. पृष्ठ 93; 5.556 तथा 5.5561 में 'उच्चावच' की जगह 'सोपानमूलक' देना ही बेहतर होगा।

16. पृष्ठ, 100-101; 6.1232 और 6.1233 में 'स्वयंसिद्ध-अपचेयता-सिद्धांत' की जगह 'स्वयंसिद्ध समानयनता' देना ज़्यादा उपयुक्त होगा। 'अपचेयता' रसायनशास्त्र में प्रयुक्त होने वाला शब्द है, जबकि 'समानयनता' गणित में।

17. पृष्ठ, 102; 6.1262 में दूसरी पंक्ति : 'रीतितंत्र' की जगह 'क्रियाविधि' ही ठीक होगा— '... पहचानने की सहायक क्रियाविधि ही है।'

18. पृष्ठ, 102; 6.1264 में प्रूफ़ के लिए 'उपपत्ति' की जगह 'प्रमाण' का प्रयोग ही ठीक होगा— इसके ठीक पहले 6.1263 में अनुवादक ने 'प्रमाण' शब्द का ही प्रयोग किया है।

'मोडस पोनेंस' के लिए विधि-वध्यात्मक हेतु फलानुमान का प्रयोग किया गया है। प्रतिज्ञप्तिमूलक तर्कशास्त्र में 'मोडस पोनेंस' (लैटिन) अनुमान का एक नियम है जिसे 'इंप्लीकेशन एलीमिनेशन' (अर्थापत्ति विलोपन अथवा उपलक्षण बहिष्करण) कहा जाता है। इसी पुस्तक में इसका विवरण मौजूद है (5.101, 5.5351)— 'यदि p तो q'; सरल शब्दों में, प्रतिज्ञप्तिमूलक तर्कशास्त्र में यह नियम है कि 'यदि p तो q' - इस शर्त-आश्रित वक्तव्य को स्वीकार किया जाता है और यदि 'p' सत्यात्मक है, तो 'q' भी सत्यात्मक होगा। क्या मोडस पोनेंस के लिए शर्त-आश्रित (अथवा आश्रय-सिद्ध) हेतु फलानुमान लिखा जा सकता है? (जैसे कोई तालाब में उठती भाप को देखकर यह कहे कि इस तालाब में आग है, तो उसका वह अनुमान *आश्रय-असिद्ध रूप हेत्वाभास* से युक्त होगा। यह वाक्य भी मैंने महाभारत की एक पाद-टिप्पणी से लिया है।)

19. पृष्ठ, 107; 6.361 की दूसरी पंक्ति में 'कल्पनीय' की जगह 'विचारणीय' अथवा 'विचार का विषय' ज़्यादा उपयुक्त होगा।

20. पृष्ठ, 109; 6.36111 में 'डाइमेंसंस' के लिए 'विम' की जगह 'आयाम' भी लिखा जा सकता है।

21. पृष्ठ, 110; 6.4312 के अंतिम वाक्य की अंतिम पंक्ति : 'अपेक्षित समाधान नहीं है' की जगह 'समाधान अपेक्षित नहीं है' होगा। 6.432, 6.5, 6.51— इन सभी में 'रिड्ल' के लिए 'समस्या' की जगह 'पहेली' शब्द ही ज़्यादा उपयुक्त लगता है।

22. पृष्ठ, 112; 7 : 'अनभिव्यंग्य' की जगह 'जो बात कही नहीं जा सकती' ही बेहतर है। 'जो बात कही नहीं जा सकती वहाँ मौन ही श्रेयस्कर है।' प्राक्कथन में अनुवादक ने यही लिखा भी है।

दार्शनिक पदों की शब्दावली किताब के अंत में ज़रूर दी जानी चाहिए थी। इस महत्त्वपूर्ण किताब में यह कमी खलती है। इससे हिंदी

विट्गेन्स्टाइन ने एक जगह लिखा है, 'जिसे वस्तुतः विचारों का प्रवाह होना चाहिए, एक किताब अथवा एक लेख उसे जड़ीभूत कर देता है।' अनुवादों का जीवंत प्रवाह जड़ीभूत मूल कृति को अपनी जड़ता से मुक्त कर देता है। एक अद्वितीय कृति का अनेक अनुवादों में पुनर्जन्म होता रहता है। अनुवादक के रूप में रचनाकार का भी अलग-अलग भाषा-संसार में अवतार होता रहता है। ... अशोक वोहरा के अनुवाद में यह सहज प्रवाह बना रहता है। दार्शनिक शब्दावली में भी उन्होंने यह कोशिश की है कि भारतीय तार्किक-गणितीय परम्परा में उपलब्ध समानार्थी अथवा मिलते-जुलते शब्दों का प्रयोग किया जाए, और अपनी ओर से अनावश्यक शब्द गढ़ने से बचा जाए। यह श्रम-साध्य प्रक्रिया है।

में दर्शनशास्त्र पढ़ने वाले विभिन्न विश्वविद्यालयों के छात्रों को काफ़ी लाभ होता। ख़ासकर युरोपीय दर्शनशास्त्र के पदों के लिए अलग-अलग अनुवादों में (अनेक मामलों में) अलग-अलग शब्द मिलते हैं और इससे काफ़ी विभ्रम की स्थिति पैदा होती है।

प्रूफ़ की ग़लतियाँ

हिंदी की किताबों में प्रूफ़ की ग़लतियों पर विशेष ध्यान देने की बात अक्सर कही जाती रही है। लेकिन इस मामले में कोई प्रगति दिखाई नहीं देती। इस किताब में भी प्रूफ़ की कई ग़लतियाँ हैं जिन्हें शीघ्र सुधारना ज़रूरी है। सामान्य ग़लतियों के अलावा कई ऐसी ग़लतियाँ रह गयी हैं जिनसे वाक्य का अर्थ बदल जाता है। इन ग़लतियों से अनुवादक-लेखक को कितनी पीड़ा होती है, इसे मैं समझ सकता हूँ। यहाँ पूरा शुद्धि-पत्र तो नहीं दिया जा सकता लेकिन कुछ महत्त्वपूर्ण ग़लतियों की ओर ध्यान आकृष्ट किया जा सकता है :

1. आवरण पर अनुवादक का नाम अशोक बोहरा है, जबकि अंदरूनी आवरण, उसके पृष्ठभाग तथा अनुवादकीय में अशोक वोहरा। लेखक का अंग्रेज़ी में जो नाम दिया गया है, उससे पता चलता है कि वोहरा ही सही है। किताब के आवरण पर 'फिलोसॉफ़िकस' है लेकिन अंदरूनी आवरण तथा पृष्ठ 39 पर शीर्षक में 'फ़िलोसॉफ़िकस'। इसी तरह, मूल पाठ के शीर्षक (पृ. 39) में *ट्रैक्टेटस* की जगह 'ट्रैक्टेट्स' छपा है। अंदरूनी आवरण के पृष्ठ भाग में ही अंग्रेज़ी में 'Western' की जगह 'Weatem' है। भारतीय ज्ञानपीठ के प्रकाशन से इस तरह की भूल की उम्मीद नहीं की जानी चाहिए।

2. पृष्ठ 55; 4.02 की दूसरी पंक्ति : 'जाने' डिलीट होगा। वाक्य इस प्रकार होगा : 'हमारी इस जानकारी का कारण यह है कि प्रतिज्ञप्तिगत प्रतीक का अर्थ बिना किसी व्याख्या के समझा जा सकता है।' इसी तरह, पृ. 60 (4.114) की चौथी पंक्ति में ग्यारहवाँ शब्द 'को' डिलीट होगा। इस वाक्य को इस प्रकार भी लिखा जा सकता है : 'जो विचार का विषय हो सकता है, उसकी परिधि से बाहर निकल कर इस शास्त्र को यह सीमा निर्धारित करनी चाहिए कि विचार का विषय क्या नहीं हो सकता है।'

3. पृष्ठ 63; 4.1272 की पहली पंक्ति : 'अचर' की जगह 'चर' होगा। वैसे मेरे विचार में पूरा वाक्य इस प्रकार लिखा जाना चाहिए : 'अत: चर नाम '×' छद्म-प्रत्यय वस्तु का समुचित चिह्न है।' पृ. 70; 4.4611 की दूसरी पंक्ति में 'गणित' की जगह 'अंकगणित' होगा।

4. पृष्ठ 72; 5.02 की नौवीं पंक्ति : '~p' की जगह 'p' होगा। वाक्य इस प्रकार होगा : 'p' के अर्थ की पूर्ण जानकारी के बिना '~p' के अर्थ को समझा नहीं जा सकता।

इसी की तेरहवीं पंक्ति में 'जुलियस' की जगह 'जुलियन' होगा।

5. पृष्ठ 73; 5.101 में प्रस्तुत आकृतिगण में नौवीं पंक्ति : (FTTF) की जगह (TFFT) होगा।

6. पृष्ठ 74; 5.1311 की चौथी और पाँचवीं पंक्ति में तिर्यक चिह्न (/) की जगह शेफर्स स्ट्रोक (|) होगा : 'p/q./.p/q' की जगह 'p|q.|.p|q' और 'p/p' की जगह 'p|p' तथा कोष्ठक के अंदर 'p/q' की जगह 'p|q' होगा., 1913 में तर्कशास्त्री हेनरी शेफर ने इस संकेत (|) का प्रयोग शुरू किया था जिसका मतलब था 'न तो यह और न वह'— 'न p और न q' को इस तरह दर्शाया जाता है p|q। उन्हीं के नाम पर यह संकेत-चिह्न शेफर्स स्ट्रोक कहलाता है।

7. पृष्ठ 86; 5.51 की पहली पंक्ति के पहले संकेत-चिह्न (N६) में N डिलीट होगा, सिर्फ़ ६ होगा। इसी तरह की कुछ और त्रुटियाँ हैं।

संकेत चिह्नों के बीच स्पेस देने अथवा न देने के मामले में अनेक जगहों पर असावधानी दिखाई देती है। यहाँ उसका विवरण मैं नहीं दे सकता। इसे पृ. 79, 80, 81, 83, 86, 96, 98, 99 आदि पर देखा जा सकता है। तर्कशास्त्र और गणित के संकेत-चिह्नों में इस तरह की असावधानी से इन चिह्नों

द्वारा द्योतित अर्थ ही बदल जाते हैं। जहाँ स्पेस नहीं देना है, वहाँ स्पेस देने से एक संकेत–चिह्न दो पृथक चिह्नों में बदल जाता है, और जहाँ स्पेस देना है, वहाँ नहीं देने से दो पृथक् चिह्न एक चिह्न में बदल जाता है। वैसे अधिकांश जगहों पर यह ठीक है।

8. पृ. 96; 6.02 की छठी पंक्ति में '×,' के बाद स्पेस होगा (×, Ω'×, Ω'Ω'×, Ω'Ω'Ω'×, ...). नौवीं पंक्ति के अंत में '×' डिलीट होगा : '[Ω0'×, Ω1'×, Ωv+1'×]'।

9. पृ. 89; 5.531 की पहली पंक्ति में 'f(aa)' तथा 'f(bb)' की जगह 'f(a,a)' और 'f(b,b)' होगा।

10. पृ. 89; 5.532 की दूसरी पंक्ति के आरम्भ में '(∃×.y)' में '.4' डिलीट होगा; पूरा चिह्न इस प्रकार होगा : '(∃×).f(×,×)'।

इसी तरह की कुछ और त्रुटियाँ हैं जिनसे वाक्यों, चिह्नों अथवा समीकरणों का अर्थ बदल जाता है।

यह सुखद है कि अशोक वोहरा अनुवाद के क्रम में कोई अनावश्यक प्रयोग करने, अनुवाद में अपनी ओर से कोई छूट लेने से भरसक बचने का प्रयास करते हैं। वे मूल पाठ पर (और विट्गेन्स्टाइन पर) हावी होने की क़तई कोशिश नहीं करते— ख़ुद पृष्ठभूमि में रहते हुए मूल पाठ के अनुवाद का आनंद लेते दिखते हैं। कई बार मूल पाठ पर हावी होने के क्रम में कई अनुवादक न सिर्फ़ अनुवाद के अनासक्त आनंद से ख़ुद वंचित रह जाते हैं, बल्कि पाठकों को भी मूल पाठ के आस्वाद से वंचित कर देते हैं।

पुस्तक की विशेषता उसकी सादगी है, सादग़ी की सहज सरसता है। 'अनुवादकीय' में अनुवादक ने संक्षेप में विट्गेन्स्टाइन और *ट्रैक्टेटस* का रोचक परिचय तो दिया ही है, अपनी श्रमसाध्य अनुवाद-प्रक्रिया का भी विवरण प्रस्तुत किया है। दर्शनशास्त्र, ख़ासकर विट्गेन्स्टाइन के दर्शन में रुचि रखने वाले पाठकों तथा विद्यार्थियों के लिए यह एक उपयोगी एवं ज़रूरी किताब है।